RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-18, अंक-1, दिसम्बर 2024 जनवरी फरवरी 2025

रासो
त्रैमासिक शोध पत्रिका
2005
॥ स्वस्ति पन्थामनु चरेम॥

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-18 | अंक - 1 | दिसम्बर-2024, जनवरी-फरवरी-2025

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** – पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** – प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** – प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** – पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** – पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** – सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** – पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** – आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** – पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

महात्मा गांधी और राष्ट्रीय शिक्षा नीति

रितु सारस्वत

सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)

हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

महात्मा गांधी ने भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन का माध्यम नहीं माना, बल्कि उसे राष्ट्रीय चेतना, स्वतंत्रता और स्वावलंबन की आत्मा के रूप में देखा। उनके लिए शिक्षा का प्रश्न राजनीतिक स्वतंत्रता जितना ही महत्वपूर्ण था, क्योंकि उनका मानना था कि विदेशी शासन की शिक्षा व्यवस्था भारतीय मस्तिष्क को पराधीन बनाकर राष्ट्र की शक्ति को कमजोर कर देती है। इसलिए उन्होंने शिक्षा को संघर्ष और निर्माण—दोनों का आधार माना।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के लिए महात्मा गांधी के प्रयासों को निम्नलिखित तीन चरणों में विभक्त कर सकते हैं-

(1) असहयोग आंदोलन से 1934 तक :- 1920 के असहयोग आंदोलन के समय गांधी ने छात्रों और शिक्षकों से अंग्रेजी शासन के अंतर्गत चल रहे विद्यालयों के बहिष्कार का आह्वान किया। किंतु वे केवल बहिष्कार तक सीमित नहीं रहे; उन्होंने इसके साथ ही राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना का रचनात्मक विकल्प भी प्रस्तुत किया। यह एक ऐसी शिक्षा थी जो भारतीय जीवन-मूल्यों, मातृभाषा, स्वावलंबन और स्वदेशी की भावना पर आधारित हो।

28 सितंबर 1920 को अहमदाबाद में विद्यार्थियों के बीच दिए गए उनके भाषण में शिक्षा-दृष्टि अत्यंत स्पष्ट दिखाई देती है। उन्होंने कहा कि राष्ट्र की स्वतंत्रता विद्यार्थियों के हाथ में है; यदि सभी विद्यार्थी अंग्रेजी शासन के स्कूलों का त्याग कर दें तो भारत का स्वरूप एक महीने में बदल जाएगा। गांधी ने यह भी स्पष्ट किया कि वे शिक्षा के विरोधी नहीं, बल्कि उस गुलाम बनाने वाली शिक्षा के विरोधी हैं जो चरित्र निर्माण के स्थान पर दासता का पोषण करती है। वे स्वयं राष्ट्रीय विद्यालयों के चांसलर बने और अपनी शिक्षा-परिकल्पना को व्यवहार में उतारकर यह सिद्ध किया कि वैकल्पिक शिक्षा व्यवस्था संभव है। गांधी की दृष्टि में शिक्षा का उद्देश्य केवल पढ़ना-लिखना नहीं था, बल्कि ऐसी जीवन-पद्धति का निर्माण था जो व्यक्ति को सत्य, अहिंसा, श्रम, स्वावलंबन और नैतिकता से जोड़ सके।

(2) 1934 से 1942 तक :- 1934 के बाद गांधी ने शिक्षा पर अपने विचारों को लगातार 'हरिजन' पत्र में व्यक्त किया। इस दौर में उन्होंने शिक्षा को 'नई तालीम' की संज्ञा दी, जिसमें उनका मूल विचार यह था कि शिक्षा जीवन और श्रम की वास्तविकताओं से जुड़ी हो। वे चाहते थे कि हर बच्चा किसी न किसी उत्पादक कार्य से शिक्षा ग्रहण करे, ताकि ज्ञान और कौशल दोनों विकसित हों।

1937 में पहली बार कांग्रेस की प्रांतीय सरकारें बनीं और जब शिक्षा विभाग उनके पास आया, तब

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

गांधी ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर एक बड़ा सम्मेलन बुलाकर एक व्यापक दृष्टि प्रस्तुत की। यह दृष्टि 'कार्य-प्रधान शिक्षा', 'स्वावलंबन' और 'समाज-सेवा' के सिद्धांतों पर आधारित थी। कालांतर में जाकिर हुसैन समिति ने इसी को 'बुनियादी शिक्षा' का नाम दिया। गांधी ने स्वयं इसे प्रयोग का विषय बनाया और विभिन्न आश्रमों, विद्यालयों और संस्थानों में इसका अभ्यास कराया। उनके अनुसार शिक्षा का आधार पढ़ाई-लिखाई नहीं, बल्कि जीवन-कौशल होना चाहिए; बच्चों को श्रम, कला, खेती, हस्तकला आदि से सीखना चाहिए, ताकि उनका जीवन समाज से जुड़ा रहे और उनके भीतर मानवीय मूल्यों का विकास हो।

(3) 1942 से 1948 तक :- इस अंतिम काल में गांधी का ध्यान स्वतंत्र भारत के निर्माण-कार्य पर केंद्रित था। वे बार-बार कहते थे कि स्वतंत्र राष्ट्र को ऐसी शिक्षा नीति चाहिए जो मनुष्य को स्वतंत्र सोच, मानवता, परिश्रम और राष्ट्रीयता से जोड़े। वे इस बात से चिंतित थे कि अंग्रेजी शासन की शिक्षा आदत के रूप में भारतीय मन पर छाई रहेगी और स्वतंत्रता के बाद भी भारत उसी मार्ग पर चलता रहेगा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भी गांधी ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर गहन विमर्श किया और बार-बार कहा कि राष्ट्र तभी वास्तव में स्वतंत्र होगा जब उसकी शिक्षा स्वतंत्र होगी। उन्होंने यह इच्छा बार-बार व्यक्त की कि भारत में शिक्षा मातृभाषा-आधारित, ग्राम-केन्द्रित, श्रम-सम्मानित और जीवन-निर्माणकारी हो। लेकिन स्वतंत्र भारत ने उनका यह मार्ग पूरी तरह नहीं अपनाया। शिक्षा व्यवस्था फिर से अंग्रेजी-केंद्रित और परीक्षाओं पर आधारित हो गई, जबकि गांधी की शिक्षा का मूल स्वरूप स्वावलंबी, सृजनशील और मनुष्य-केंद्रित था।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी न केवल विदेशी शासन की शिक्षा व्यवस्था की आलोचना कर रहे थे, बल्कि उसके स्थान पर एक वैकल्पिक और राष्ट्रीय चरित्र वाली शिक्षा व्यवस्था स्थापित करने की दिशा में ठोस कदम भी उठा रहे थे। इसी रचनात्मक कार्य के अंतर्गत वे कई राष्ट्रीय विद्यालयों के संचालन तथा मार्गदर्शन से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए थे। किंतु असहयोग आंदोलन के दौरान परिस्थितियाँ बिल्कुल भिन्न थीं। लाखों की संख्या में छात्र सरकारी कॉलेजों और स्कूलों का त्याग कर रहे थे, और इस व्यापक बहिष्कार के कारण एक विशाल, वैकल्पिक शैक्षिक ढाँचे की आवश्यकता सामने आ गई थी। ऐसे समय में केवल कुछ राष्ट्रीय विद्यालयों के सहारे सभी त्यागी छात्रों की शिक्षा चल पाना असंभव था। इसके लिए पूरे समाज की सक्रिय भागीदारी और सामूहिक त्याग की आवश्यकता थी।

इसी संदर्भ में गांधी ने अलीगढ़ में छात्रों तथा उनके अभिभावकों को संबोधित करते हुए स्पष्ट कहा कि स्वतंत्रता के पथ पर चलने वाले युवाओं को सरकारी विश्वविद्यालयों की डिग्रियों की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। उनके अनुसार यदि अभिभावक अपने बच्चों के प्रति मोह और डिग्री-केन्द्रित मानसिकता को छोड़ दें, तो उनके लिए वैकल्पिक राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था सहजता से की जा सकती है। उन्होंने यह भी कहा कि यदि राष्ट्र एक सप्ताह तक आत्म-त्याग करे तो बच्चों की शिक्षा के लिए एक वर्ष का खर्च जुटाया जा सकता है। गांधी ने हिंदू और मुस्लिम समाज के बीच उपलब्ध बड़े धर्मार्थ तथा परमार्थ कोषों का भी उल्लेख किया और बताया कि इन निधियों के सहारे भी राष्ट्रीय शिक्षा का आधार मज़बूत किया जा सकता है, वह भी बिना किसी कठिनाई के। यह विचार स्पष्ट करता है कि गांधी शिक्षा को केवल सरकार का विषय नहीं, बल्कि राष्ट्र का सामूहिक दायित्व मानते थे।

नवंबर 1920 में आगरा में विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए गांधी ने शिक्षा के नैतिक पक्ष पर अपना गहरा असंतोष व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि हमारी शिक्षा व्यवस्था ने हमें कायर बना दिया है और

यह तालीम हमें भय-मुक्त नहीं करती, बल्कि हमारे भीतर के भय को और अधिक पोषित करती है। ऐसी शिक्षा, जिसमें सत्य के सहारे चलने का अवसर न हो और जिसमें देशभक्ति के भाव को स्थान न मिले, उनके अनुसार व्यर्थ है। गांधी का यह प्रश्न अत्यंत गंभीर था कि ऐसी शिक्षा का मूल्य ही क्या है जो मनुष्य को सत्य, साहस और राष्ट्रधर्म से दूर ले जाए।

उन्होंने इस भ्रम को भी दूर किया कि पुस्तकों की मोटाई, विषयों की कठिनता या शास्त्रीयता ही शिक्षा की गुणवत्ता का परिचायक है। गांधी के शब्दों में, ये मोटी पुस्तकें विद्यार्थियों को वास्तविक स्वतंत्रता से दूर करके उन्हें भ्रमित करती हैं। उन्होंने इसे ऐसी शिक्षा बताया जो जनता के धन का दुरुपयोग करके विद्यार्थियों को भुलावे में डालती है—जैसे किसी को चोरी करके मिले धन से नशे का आदी बना देना। यह उपमा स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि गांधी औपनिवेशिक शिक्षा को नैतिक दृष्टि से भ्रष्ट, राष्ट्रविरोधी और आत्महीनता को जन्म देने वाली प्रणाली के रूप में देखते थे।

महात्मा गांधी ने पाश्चात्य शिक्षा के केवल नकारात्मक पक्षों पर ही बल नहीं दिया, बल्कि उसके भीतर छिपी कुछ उपयोगी संकेतों को भी स्वीकार किया। वे कहते थे कि शिक्षा का उद्देश्य केवल दिमाग को विकसित करना नहीं, बल्कि शरीर, हृदय और चरित्र की एकता के साथ मनुष्य को संपूर्ण बनाना है। इसलिए वे इस बात पर जोर देते हैं कि हर विद्यार्थी को शारीरिक श्रम की शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिए। उनके अनुसार जो विद्यार्थी अपने जीवन-निर्वाह की सरल, श्रम-साध्य विधियों को नहीं सीखते और केवल डिग्री के भरोसे पलना चाहते हैं, वे राष्ट्र की स्वतंत्रता में भी अर्थपूर्ण योगदान नहीं दे सकते। गांधी स्पष्ट करते हैं कि राष्ट्र केवल उन्हीं के बल पर स्वतंत्र हो सकता है, जिनमें ईश्वर पर विश्वास हो, इंद्रियों पर संयम हो, अहिंसा और अस्तेय का पालन हो और जो अपने अंत:करण की आवाज को सुन सकें। यह शिक्षा का आध्यात्मिक और नैतिक आधार था जिसे गांधी अनिवार्य मानते थे।

गांधी ने यह भी अनुभव किया कि उनके शिक्षा-विचारों को लेकर समाज में अनेक भ्रांतियाँ फैली हुई थीं। लोग मानते थे कि वे पूरी तरह से पश्चिमी शिक्षा के विरोधी हैं या यह कि वे आधुनिक ज्ञान से दूर रहना चाहते हैं। इसी भ्रम को दूर करने के लिए उन्होंने अपने विचारों को क्रमबद्ध तरीके से समझाया। उन्होंने कहा कि अंग्रेजी शासन की शिक्षा व्यवस्था के दोष केवल इस बात तक सीमित नहीं हैं कि वह एक अन्यायकारी सरकार द्वारा संचालित होती है, बल्कि उसके भीतर तीन बड़े मूलभूत दोष भी निहित हैं।

पहला दोष यह था कि यह शिक्षा पूरी तरह विदेशी संस्कृति पर आधारित है। इसमें भारतीय परंपरा, भारतीय दर्शन, भारतीय सामाजिक संरचना और भारतीय जीवन की संवेदनाओं का कोई स्थान नहीं है। इस कारण विद्यार्थी अपनी जड़ों से कटकर पश्चिमी आदर्शों की नकल में खो जाते हैं और देश की संस्कृति से दूरी बना लेते हैं।

दूसरा दोष यह था कि यह शिक्षा केवल बुद्धि-विकास तक सीमित है। इसमें हृदय और हाथ—दोनों की उपेक्षा की गई है। गांधी स्पष्ट कहते हैं कि दिमाग की शिक्षा मनुष्य को संकीर्ण बना देती है, जबकि हृदय की शिक्षा उसे स्नेह, करुणा, सत्य और सेवा का मार्ग दिखाती है, और हाथ की शिक्षा—अर्थात् श्रम—उसे स्वावलंबन और आत्मसम्मान प्रदान करती है। तीनों के सामंजस्य से ही पूर्ण मनुष्य बनता है।

तीसरा दोष यह कि विदेशी भाषा के माध्यम से वास्तविक शिक्षा संभव ही नहीं है। उनकी दृष्टि में मातृभाषा मनुष्य के मन और हृदय को जोड़ती है; विदेशी भाषा विचार और अनुभव के बीच कृत्रिम दूरी

उत्पन्न कर देती है। इसलिए वे शिक्षा को मातृभाषा में देने को अनिवार्य मानते थे।

गांधी हाथ से काम करने की शिक्षा को भारत जैसे गरीब देश के लिए विशेष रूप से आवश्यक बताते हैं। उनकी दृष्टि में यह शिक्षा विद्यार्थियों को न केवल उत्पादक बनाती है, बल्कि उनकी शिक्षा का खर्च भी निकाल सकती है। साथ ही यह उन्हें एक ऐसा कौशल प्रदान करती है जो आगे चलकर जीवन निर्वाह का साधन भी बन सकता है। इस प्रकार का प्रशिक्षण विद्यार्थियों में आत्मावलंबन, श्रम-सम्मान और वास्तविक जीवन का अनुभव विकसित करता है। गांधी कहते हैं कि यदि राष्ट्र मेहनत-मजदूरी को हेय समझने लगे तो वह नैतिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर कमजोर होता चला जाएगा।

हृदय की शिक्षा के संदर्भ में गांधी विशेष रूप से स्पष्ट हैं। उनके अनुसार हृदय की शिक्षा पुस्तकें नहीं दे सकतीं। यह तो शिक्षक के व्यक्तित्व की ऊष्मा, उसके आचरण, उसके चरित्र, और उसके 'जीवन-सहवास' से मिलती है। वे पूछते हैं कि प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में जो शिक्षक नियुक्त किए जाते हैं, क्या उनमें इतना चरित्र-बल, निष्ठा और नैतिक शक्ति होती है कि वे विद्यार्थियों के हृदय को प्रभावित कर सकें? क्या वे स्वयं उस शिक्षा से गुज़रे हैं जो हृदय को निर्मल करती है? गांधी इस बात पर भी क्षोभ व्यक्त करते हैं कि प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति पात्रता या देशभक्ति के आधार पर नहीं होती, बल्कि वहाँ प्रायः वही लोग आते हैं जिनके पास जीवनयापन का कोई अन्य साधन नहीं होता। इस प्रकार, शिक्षा का संचालन ऐसे हाथों में चला जाता है जिनमें दृष्टि, समर्पण और नैतिक शक्ति का अभाव है। यह स्थिति बच्चों के चरित्र-निर्माण के मार्ग में गंभीर बाधा है।

गांधी के अनुसार पाश्चात्य शिक्षा भारतीय जीवन-मूल्यों से कटी हुई है, इसलिए शिक्षा को स्थानीय संस्कृति, परिवेश और वास्तविक जीवन से जोड़ना आवश्यक है। वे कहते हैं कि पाठ्य-पुस्तकों में स्थानीय जीवन का अभाव बच्चों को अपनी जड़ों से दूर करता है, इसलिए शिक्षा ऐसी हो जो उनके अनुभव-जगत से मेल खाए। गांधी परिश्रम को गौरव का स्थान देते हैं और बच्चों को हस्तकौशल, श्रम, उत्पादक कार्य तथा आत्मनिर्भरता की ओर ले जाने वाली शिक्षा के पक्षधर हैं। उनका मत है कि शिक्षा का खर्च बच्चों द्वारा तैयार किए गए उपयोगी उत्पादों से निकाला जा सकता है, जिससे शिक्षा निःशुल्क और व्यावहारिक बने। वे राष्ट्रभक्त, चरित्रवान और प्रेममय शिक्षकों को अनिवार्य मानते हैं, क्योंकि वही बच्चों में संस्कार और नैतिक शक्ति का संचार कर सकते हैं।

गांधी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को बताते हैं; दूसरी भाषाओं का अध्ययन वे केवल अनुवाद, साहित्य-परिचय और सांस्कृतिक समझ के लिए उपयोगी मानते हैं। उनकी दृष्टि में शिक्षा स्वतंत्र, स्वावलम्बी और स्वशासित भारत के निर्माण का साधन है। यही कारण है कि सरकारी शिक्षा-व्यवस्था के विकल्प के रूप में उन्होंने राष्ट्रीय विद्यालयों की कल्पना की, ताकि ऐसी पीढ़ी तैयार हो सके जो राष्ट्र के पुनर्निर्माण में सक्षम हो।

गांधी का आग्रह था कि शिक्षित वर्ग गाँवों की उपेक्षा न करे, बल्कि सेवा-भाव से वहाँ जाए, कठिनाइयों का सामना करे और ग्रामीण जीवन को उन्नत बनाए। उनके अनुसार गाँवों में रहते हुए भी महान संतों की वाणी और ग्रन्थ प्रेरणा प्रदान करते हैं; इसलिए नवयुवकों को ग्राम-सेवा के प्रयासों में दृढ़ रहना चाहिए और अपनी उपस्थिति से ग्रामीण जीवन को अधिक सुंदर, उत्पादक और मानवीय बनाना चाहिए।

गांधी ने शिक्षा के अपने नए चरण में उद्योग आधारित और स्वावलम्बी शिक्षा को केंद्रीय स्थान

दिया और यह स्पष्ट किया कि वे किसी शैक्षणिक विशेषज्ञ की तरह नहीं, बल्कि एक सामान्य नागरिक के रूप में अपने सुझाव दे रहे हैं—इसलिए शिक्षाशास्त्रियों से आग्रह किया कि उन्हें हल्के में न लें, बल्कि विचार कर परीक्षण करें। उनका प्रस्ताव था कि प्राथमिक शिक्षा कम-से-कम सात वर्ष की हो, और अंग्रेजी को छोड़कर सभी विषय मातृभाषा में पढ़ाए जाएँ; साथ ही विद्यार्थी को किसी एक उद्योग (हस्तकला/कृषि/हुनर) की पूरक और संपूर्ण तालीम दी जाए ताकि उसी उद्योग के आधार पर उसे व्यवहारिक, बौद्धिक और नैतिक ज्ञान मिलकर उसका सर्वांगीण विकास हो और वह उच्चतर माध्यमिक स्तर तक पढ़ाई कर सके।

गांधी ने अपने नए शिक्षा-विचारों को शासन-नीति का आधार बनाने के लिए सबसे पहले 'हरिजन' में प्रकाशित किया, जिसके बाद 22 अक्टूबर 1937 को वर्धा में शिक्षा परिषद बुलाई गई। परिषद में उनके विचारों पर विस्तार से विमर्श हुआ और डॉ. ज़ाकिर हुसैन की अध्यक्षता में बनी समिति ने इन्हें योजनाबद्ध रूप देकर 'वर्धा शिक्षा योजना' के रूप में प्रस्तुत किया, जिसे आगे चलकर 'बुनियादी शिक्षा' कहा गया। 1942 से 1944 तक जेल में रहने के दौरान गांधी का चिंतन नई तालीम की दिशा में और गहरा हुआ। जेल से लौटने के बाद उन्होंने स्पष्ट कहा कि नई तालीम केवल बच्चों की नहीं, बल्कि परिवार और समाज के सभी सदस्यों की शिक्षा है; इसका उद्देश्य घरों तक पहुँचना और माता-पिता को भी शिक्षित बनाना है।

गांधी के अनुसार नई तालीम जीवन-भर चलने वाली शिक्षा है, जिसमें बालक ही नहीं, स्त्री-पुरुष, युवक-वृद्ध सभी सम्मिलित होते हैं। इसके लिए अलग से धन पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि शिक्षा का व्यय शिक्षा-प्रक्रिया से ही निकलना चाहिए। यह शिक्षा बालक के जन्म से और, गांधी के अनुसार, उससे भी पहले के संस्कारों से आरम्भ होती है। नई तालीम का दायरा केवल विद्यालय की दीवारों तक सीमित नहीं है; यह जीवन के धंधों, कौशलों, ग्राम-सेवा, स्वच्छता, स्वास्थ्य-संरक्षण तथा दैनिक जीवन के हर आयाम को समाहित करती है। इस प्रकार गांधी के विचारों में नई तालीम एक समग्र, श्रम-आधारित, स्वावलम्बी और समाज-व्यापी शिक्षा है, जो जीवन को ही शिक्षा का माध्यम और उद्देश्य दोनों बनाती है।

गांधीजी नई तालीम के सिद्धान्तों पर अपने पत्र 'हरिजन' में लगातार लिखते रहे। अप्रैल 1947 के लेख में उन्होंने स्पष्ट किया कि हिन्दुस्तानी तालीमी संघ द्वारा अपनाया गया यह तरीका पूरी तरह देशज है—न तो यह विदेशी ढंग से उधार लिया गया है और न ही देश पर थोपा गया है। नई तालीम की जड़ें भारत के गाँवों और स्वदेशी वातावरण में हैं, इसलिए यह मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा तीनों के संतुलित विकास को लक्ष्य बनाती है। इसके विपरीत गांधी पश्चिमी शिक्षा को अधिकतर सैनिक-धर्मी बताते हैं, जिसमें आत्मिक पक्ष दब जाता है और केवल शरीर तथा बुद्धि पर ध्यान केंद्रित होता है।

गांधी का विश्वास था कि हस्तकला और दस्तकारी के माध्यम से ही विद्यार्थी के शरीर, मन और आत्मा में वास्तविक सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। उनकी दृष्टि में नई तालीम की बड़ी विशेषता यह भी थी कि यह स्वावलम्बी है; इसे चलाने के लिए भारी आर्थिक संसाधनों की आवश्यकता नहीं पड़ती। अत्यंत कम आय वाले समाज में, जहाँ करोड़ों लोग भूख और गरीबी से जूझते हैं, वहाँ शिक्षा को आत्मनिर्भर बनाना ही एकमात्र व्यावहारिक उपाय है—नई तालीम यही क्षमता प्रदान करती है।

गांधी ने यह भी स्पष्ट किया कि नई तालीम का लक्ष्य न तो बच्चों को भविष्य का अधिकारी या नेता बनाना है और न ही उन्हें किसी भी प्रकार की दासता में ढालना। इसका उद्देश्य केवल इतना है कि हर बालक सच्चा हिन्दुस्तानी और संवेदनशील, आत्मनिर्भर, मानवीय गुणों से सम्पन्न इंसान बने। नई तालीम

मनुष्यत्व को जगाने वाली, जीवन से उपजी और जीवन में रची–बसी शिक्षा है।

14 दिसम्बर 1947 को दिल्ली में तालीम संघ की बैठक में प्रस्तुत गांधीजी के विचार उनके अंतिम और परिपक्व शिक्षा–दर्शन के रूप में स्वीकार किए जाते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि सामान्य रूप से बुनियादी शिक्षा को केवल हस्त–उद्योग आधारित शिक्षा समझ लिया जाता है, जबकि नई तालीम की अवधारणा इससे कहीं अधिक गहरी और व्यापक है। इसकी नींव सत्य और अहिंसा जैसे आध्यात्मिक एवं नैतिक सिद्धांतों पर टिकी है, क्योंकि गांधी के अनुसार वही शिक्षा है जो मनुष्य को वास्तव में मुक्त करती है। असत्य और हिंसा मनुष्य के भीतर बन्धन, भय और अंधकार पैदा करते हैं; इसलिए ऐसी प्रवृत्तियों का शिक्षा में कोई स्थान नहीं हो सकता।

गांधीजी ने इस नए शिक्षा–दर्शन के व्यापक स्वरूप को पाँच स्तरों में व्यवस्थित करने का सुझाव दिया, जिससे शिक्षा केवल विद्यालय तक सीमित न रहकर जीवन के हर चरण को स्पर्श कर सके। उनके अनुसार जन्मपूर्व और प्रारम्भिक बाल्यावस्था से लेकर किशोर, युवा, वयस्क, शिक्षक और ग्राम–समाज— सभी इस नई तालीम के दायरे में आते हैं। उन्होंने शिक्षा की इस नई संरचना को जीवनपर्यंत सीखने और समाज की पुनर्रचना के मार्ग के रूप में देखा। इसमें बच्चों के लिए बालबाड़ी से लेकर 7 से 14 वर्ष तक की बुनियादी शिक्षा, आगे वयस्कों के लिए उत्तर–बुनियादी शिक्षा तथा ग्राम–विश्वविद्यालय के रूप में प्रशिक्षण और शोध का केन्द्र, और अंत में प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था सम्मिलित थी, जिसमें विशेष ध्यान गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं पर दिया गया था ताकि शिक्षा का वास्तविक लाभ सामाजिक इकाई—परिवार और गाँव—तक पहुँचे। इस दृष्टि से नई तालीम का एक विशाल रूप सामने आया और सेवा ग्राम को इस प्रयोग को आगे बढ़ाने की खुली दिशा मिल गई। आने वाले कई वर्षों तक सेवा ग्राम भारत में शिक्षा, स्वावलम्बन और नैतिक जीवन के प्रयोगों का एक प्रेरणादायी केन्द्र बनकर उभरा।

निष्कर्षत: महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान शिक्षा को स्वतंत्रता और राष्ट्र–निर्माण का मुख्य आधार माना। उन्होंने अंग्रेज़ी शासन से जुड़ी, विदेशी संस्कृति पर आधारित और हाथ–हृदय–मस्तिष्क के संतुलित विकास से रहित पाश्चात्य शिक्षा की तीखी आलोचना की और उसके विकल्प के रूप में राष्ट्रीय व स्वावलम्बी शिक्षा की अवधारणा विकसित की। असहयोग आन्दोलन से लेकर 1948 तक उनका चिन्तन लगातार विकसित हुआ—पहले राष्ट्रीय विद्यालयों के निर्माण, फिर मातृभाषा, हस्त–कौशल, श्रम–सम्मान, आत्मनिर्भरता, स्थानीय जीवन–ज्ञान और चरित्र–निर्माण पर आधारित शिक्षा की वकालत करते हुए यह विचार क्रमश: 'बुनियादी शिक्षा' और अंतत: 'नई तालीम' के रूप में परिपक्व हुआ। 1937 की वर्धा शिक्षा योजना से लेकर जेल के दिनों और 1947–48 तक उन्होंने नई तालीम को जीवन–व्यापी, श्रम–आधारित, स्वाश्रयी, मन–शरीर–आत्मा का संतुलन बनाने वाली और सत्य–अहिंसा पर आधारित शिक्षा के रूप में स्थापित किया। उनके अनुसार शिक्षा का अर्थ केवल डिग्री नहीं, बल्कि स्वतंत्र, स्वशासित, नैतिक और ग्राम–केन्द्रित समाज का निर्माण है। नई तालीम इसी व्यापक राष्ट्र–निर्माण दर्शन का व्यावहारिक रूप थी, जिसे सेवा ग्राम जैसे केन्द्रों के माध्यम से आगे बढ़ाया गया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *'नई शिक्षा की ओर' — एम. के. गांधी, सं. भरतन कुमारप्पा, प्रथम संस्करण, नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद, 1953*
2. *नई तालीम (डॉ. राकेश रफीक) गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति राजघाट (महात्मा गाँधी की शिक्षा दृष्टि) नई दिल्ली, 2013*
3. *आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, डॉ. वी.पी. वर्मा लक्ष्मी नारायण, अग्रवाल, आगरा, 1971*
4. *गांधी जीवन दर्शन, डॉ. चंद्रिका प्रसाद शर्मा, साहित्य प्रकाशन मालीपाड़ दिल्ली, 1995*
5. *गांधी दर्शन की रूपरेखा, डॉ. अखिलेश प्रसाद दुबे, अंसारी रोड़, नई दिल्ली, 2003*
6. *गांधी अहिंसा : प्रशिक्षक निदर्शिका एन राधाकृष्णन राजघाट नई दिल्ली 2001*
7. *Teching of Mahatama Gandhi Ed. Jag Parvesh Chander Lohore, 1945*
8. *Selection from Gandhi (Ed. N.K. Bose) Allahabad, 1948*
9. *Gandhian Constitution for free India SN (Agarwal) Allahabad, 1946*
10. *Studies in Gandhism, Nirmal Kumar Basu Calecutta 1947*
11. *The Political Philosophy Mahatama Gandhi, GN Dhavan Bombay 1946*
12. *Socialism and Gandhism, Ashoka Mehta, Bombay 1935*